भजन किसका करें?
एक परमात्मा के भजन के बिना जो कल्याण चाहता है, मूढ़ है।
भगवान का विराट रूप हृदय में देखा जाता है, साधनगम्य है।
परमात्मा ही सत्य है, ॐ का जप करें।
आत्मा ही सत्य है, कठोर तपस्या से इसी जन्म में जाना जा सकता है।
अविनाशी सर्वज्ञ पद को प्राप्त किया।
हर महापुरुष का मत एक है।
अहुरमज्दा एक ईश्वर ही सत्य है।
एक ओंकार सदगुरु प्रसादि।
एक अल्लाह के सिवाय कोई सत्य नहीं है।
एक ईश्वर की शरण, श्रध्दा और साधना।
सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है और असत्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है।
परमात्मा ही सत्य है, शाश्वत है, सनातन है द्रष्टव्य है कि सत्य क्या है।
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके - गीता

।। ॐ नमः सद्‌गुरुदेवाय ।।

भजन किसका करें?

सत्य का अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता।
द्रष्टव्य है कि सत्य क्या है?

लेखक :
परमपूज्य श्री परमहंस जी महाराज का कृपाप्रसाद
स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी
श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़
ग्राम-पत्रालय– शक्तेषगढ़, जिला– मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :
श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069

शास्त्र

पहले सभी शास्त्र मौखिक थे, शिष्य-परम्परा में कण्ठस्थ कराये जाते थे, पुस्तक के रूप में नहीं थे। आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व वेदव्यास ने उसे लिपिबद्ध किया। चार वेद, महाभारत, भागवत, गीता इत्यादि महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संकलन उन्हीं की कृति है। भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान को उन्होंने ही लिखा, किन्तु उन्हें शास्त्र नहीं कहा। उन्होंने वेद को शास्त्र की संज्ञा नहीं दी, किन्तु गीता की अनुशंसा में उन्होंने कहा–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

(म.भा., भीष्मपर्व अ0 43/1)

गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है जो भगवान पद्मनाभ के श्रीमुख से निःसृत वाणी है। तब अन्य शास्त्रों के विषय में सोचने या उनके संग्रह की क्या आवश्यकता है? विश्व में अन्यत्र कहीं कुछ पाया जाता है तो उसने गीता से प्राप्त किया है। 'एक ईश्वर की सन्तान' का विचार गीता से ही लिया गया है। इसे भली प्रकार जानने के लिए देखें– **'यथार्थ गीता'**।

अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु तथा मुमुक्षुजन अर्थ-धर्म-स्वर्गोपम सुख तथा परमश्रेय की प्राप्ति के लिए देखें– **'यथार्थ गीता'**।

निवेदक : भक्तमण्डल

श्री परमहंस आश्रम

शक्तेषगढ़, चुनार, मीरजापुर, उ.प्र.

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया–चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।।
जय सद्गुरु.........भारी।।

।। ॐ ।।

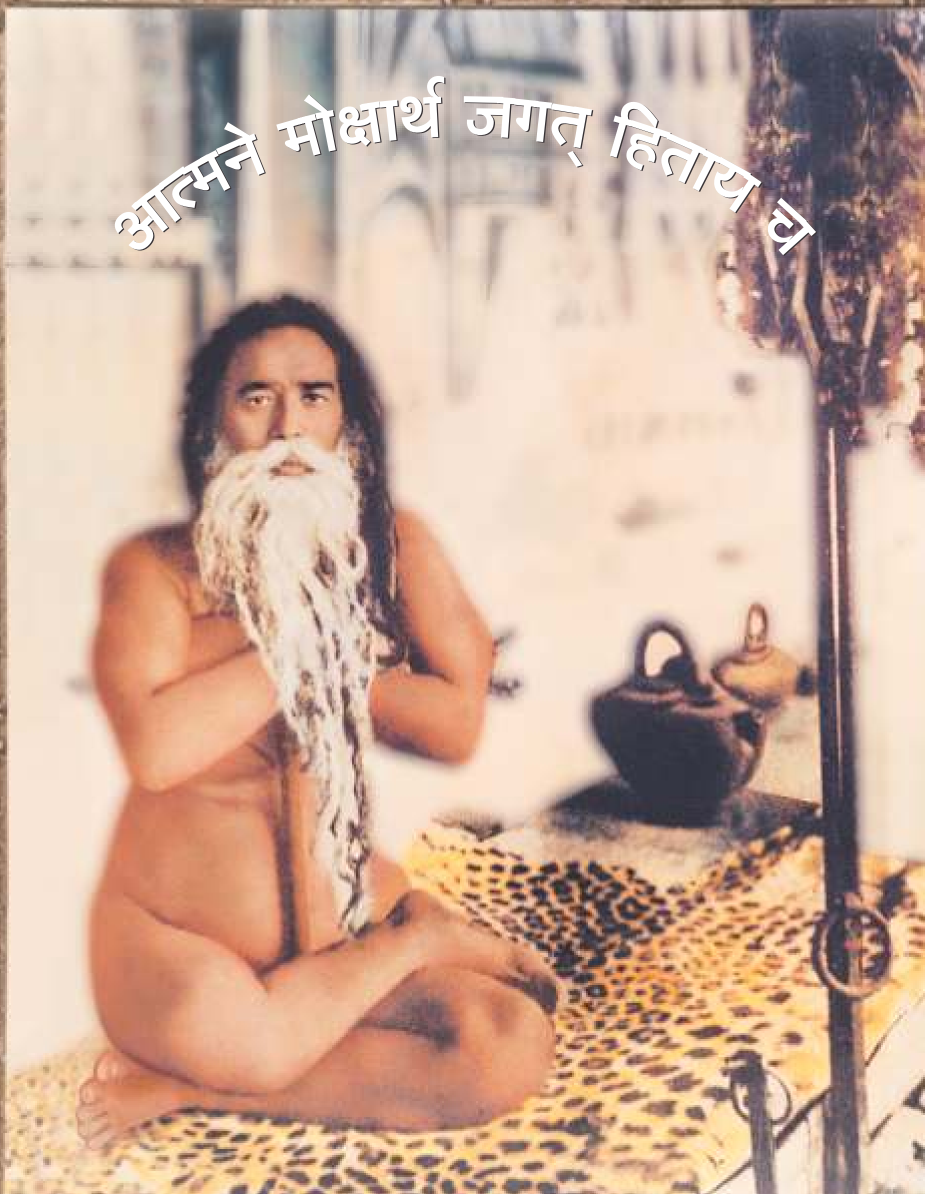

श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा–प्रसाद)

गीता मानव मात्र का धर्मशास्त्र है।
–महर्षि वेदव्यास

श्रीकृष्णकालीन महर्षि वेदव्यास से पूर्व कोई भी शास्त्र पुस्तक के रूप में उपलब्ध नहीं था। श्रुतज्ञान की इस परम्परा को तोड़ते हुए उन्होंने चार वेद, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, भागवत एवं गीता–जैसे ग्रन्थों में पूर्वसंचित भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञानराशि को संकलित कर अन्त में स्वयं ही निर्णय दिया कि–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

(म.भा., भीष्मपर्व अ० ४३/१)

गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है, जो पद्मनाभ भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी है; फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता? मानव–सृष्टि के आदि में भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निःसृत अविनाशी योग अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता, जिसकी विस्तृत व्याख्या वेद और उपनिषद् हैं, विस्मृति आ जाने पर उसी आदिशास्त्र को भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति पुनः प्रकाशित किया, जिसकी यथावत् व्याख्या '**यथार्थ गीता**' है।

'गीता' का सारांश इस श्लोक से प्रकट होता है–

एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम्
एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।

–(गीता–माहात्म्य)

अर्थात् एक ही शास्त्र है जो देवकीपुत्र भगवान ने श्रीमुख से गायन किया– गीता! एक ही प्राप्त करने योग्य देव है। उस गायन में जो सत्य बताया– आत्मा! सिवाय आत्मा के कुछ भी शाश्वत नहीं है। उस गायन में उन

महायोगेश्वर ने क्या जपने के लिये कहा? ओम्। अर्जुन! ओम् अक्षय परमात्मा का नाम है, उसका जप कर और ध्यान मेरा धर। एक ही कर्म है गीता में वर्णित परमदेव एक परमात्मा की सेवा। उन्हें श्रद्धा से अपने हृदय में धारण करें। अस्तु, आरम्भ से ही गीता आपका शास्त्र रहा है। भगवान श्रीकृष्ण के हजारों वर्ष पश्चात् परवर्ती जिन महापुरुषों ने एक ईश्वर को सत्य बताया, गीता के ही सन्देशवाहक हैं। ईश्वर से ही लौकिक एवं पारलौकिक सुखों की कामना, ईश्वर से डरना, अन्य किसी को ईश्वर न मानना– यहाँ तक तो सभी महापुरुषों ने बताया; किन्तु ईश्वरीय साधना, ईश्वर तक की दूरी तय करना– यह केवल गीता में ही सांगोपांग क्रमबद्ध सुरक्षित है। गीता से सुख–शान्ति तो मिलती ही है, यह अक्षय अनामय पद भी देती है। देखिये श्रीमद्भगवद्गीता की टीका– '**यथार्थ गीता**'।

यद्यपि विश्व में सर्वत्र गीता का समादर है फिर भी यह किसी मज़हब या सम्प्रदाय का साहित्य नहीं बन सकी; क्योंकि सम्प्रदाय किसी–न–किसी रूढ़ि से जकड़े हैं। भारत में प्रकट हुई गीता विश्व–मनीषा की धरोहर है, अतः इसे राष्ट्रीय शास्त्र का मान देकर ऊँच–नीच, भेदभाव तथा कलह–परम्परा से पीड़ित विश्व की सम्पूर्ण जनता को शान्ति देने का प्रयास करें।

।। ॐ ।।

भजन किसका करें?

सत्य का अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। द्रष्टव्य है कि सत्य क्या है?

महाकुम्भ के अवसर पर चण्डीद्वीप (हरिद्वार) में दि० १०-४-८६ ई० की जनसभा में स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी का प्रवचन।

बन्धुओ!

सागर-मन्थन के परिणाम में निकले अमृत-घट से कुछ अंश इन्हीं स्थलों पर छलक गया था, जहाँ कुम्भ-मेलों के आयोजनों का इतिहास है। ये आयोजन इसीलिये होते हैं कि उस अमृत-तत्त्व के शोध की विधि मिल जाय। यह नहीं कि मेले में आये, स्नान किया, दृश्य देखा और लौट गये। ये जो कुम्भ-मेले लगते हैं, मात्र इतने के लिए ही लगते हैं कि धर्म के विषय में, इष्ट के विषय में, अपने कल्याण के रास्ते में हमारी जो भ्रान्तियाँ हैं मिट जायँ। सम्प्रति श्रीमद्भगवद्गीता और अन्य योगशास्त्रों के अनुसार एक परमात्मा और उसकी प्राप्ति की एक निर्धारित क्रिया के स्थान पर असंख्य पूजा-पद्धतियाँ प्रचलन में हैं। कोई कहता है- गाय धर्म है, कोई कहता है- पीपल धर्म है, तो कोई वर्ण और कोई आश्रम का महत्त्व बताता है। अतः यह प्रश्न उलझता ही चला जाता है कि सनातन-धर्म क्या है? आज का प्रश्न भी ऐसा ही है कि इष्ट कौन है? भजन किसका करें?

दुनिया में सबसे अधिक धार्मिक, भजन-चिन्तन करनेवाला, पूजा-पाठ करनेवाला हिन्दू ही है; परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि धर्म के प्रति इतना आस्थावान् हिन्दू जीवन के अन्तिम समय तक यह निश्चय ही नहीं कर पाता कि हमारा इष्ट कौन है? हम किसकी पूजा करके कल्याण को प्राप्त हो सकते हैं? इसके मूल में देखा जाय तो बहुदेववाद का प्रचार ही एकनिष्ठ होने में सबसे अधिक बाधक सिद्ध होता है। एक ही परिवार में दस सदस्य हैं, तो सबके देवता अलग-अलग हैं। कोई हनुमान का भक्त है तो कोई शिव का, कोई देवी का तो कोई किसी अन्य देवता का। अपने-अपने देवी-देवताओं के लिये लोग एक दूसरे से झगड़ा भी करते देखे जाते हैं। किसी को यह मालूम नहीं कि शाश्वत कौन है? किसकी उपासना से शाश्वत धाम की प्राप्ति होगी? अनेक देवी-देवता हमारे मन में इस प्रकार समा गये हैं कि अन्त समय तक हम किसी पर विश्वास ही नहीं टिका पाते। मृत्यु के समय जब लड़के आसपास खड़े होकर कहते हैं कि- दादा! अब चिन्ता त्यागकर भगवान का स्मरण कीजिये, तो दादा एक झटके से कह गुजरते हैं- हे हनुमान जी, हे दुर्गाजी, हे शीतला माई, हे विन्ध्यवासिनी देवी, हे

मैहरवाली माता, हे हरसूब्रह्म बाबा, हे शंकरजी! अर्थात् औसतन पचीस-तीस नामों का एक साथ स्मरण करने लगते हैं। इस तरह भ्रान्ति अन्त तक बनी रहती है, तो भला **'एक मन्दिर दस देवता क्यों कर बसे बजार।'** हृदय एक मन्दिर है जो एक परमात्मा को अपने अन्दर स्थान दे सकता है, उसमें अनेक लोगों को स्थान नहीं दिया जा सकता। **'दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम।'** अतः हृदय-देश में किसी एक को बैठाना ही उचित होगा।

आइये देखें कि इस सन्दर्भ में हमारे पूर्व महापुरुषों ने क्या कहा? भगवान श्रीकृष्ण ने किसे इष्ट कहा? भगवान राम ने किसका भजन करने के लिये कहा? भगवान शिव ने किसका स्मरण करने का निर्देश दिया? स्वयं इन आप्तपुरुषों ने किसका चिन्तन किया? केवल इतनी ही बात आप ज्यों-का-त्यों मान लीजिये, तो न सन्देह है और न भविष्य में होगा। खेद इस बात का है कि हम इस पर विचार ही नहीं करते। कदाचित् विचार आता भी है तो हम इतने भयभीत हैं कि इस विषय में अपने निर्णय को बदल नहीं पाते कि कहीं पुरानेवाले देवता महाराज नाराज न हो जायँ, दुःख न दे दें।

देखें, इस विषय में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने '**गीता**' में अपना स्पष्ट विचार प्रकट किया है-

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।। *(गीता, ८/१५)*

अर्जुन! मुझे प्राप्त होकर पुरुष क्षणभंगुर, दुःखों की खान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता बल्कि वह पुरुष मुझे प्राप्त होता है। जो पुनर्जन्म में आता है वह दुःखों की खान है। केवल मुझे प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता; बल्कि **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'** *(गीता, १८/६२)*- वह शाश्वत, सदा रहनेवाला स्थान, परमधाम को पा जाता है। अब देखना है कि पुनर्जन्म की परिधि में आता कौन-कौन है?-

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। *(गीता, ८/१६)*

अर्जुन! ब्रह्मा से लेकर चौदहों भुवन, चराचर जगत् पुनरावर्ती स्वभाववाला है; किन्तु मुझे प्राप्त होनेवाला पुरुष पुनर्जन्म को प्राप्त न होकर शाश्वत धाम को पा लेता है। स्पष्ट है कि ब्रह्मा और उसके द्वारा सृजित सारी सृष्टि मरणधर्मा है। इसके अन्दर देवता, पितर, दानव, ऋषि, सूर्य, चन्द्र सभी आ जाते हैं। मानव-जीवन का परम लक्ष्य है अमरत्व की प्राप्ति। इस लक्ष्य की प्राप्ति, श्रीकृष्ण के अनुसार, एक परमात्मा के चिन्तन से ही सम्भव है। उदाहरणार्थ- आपको समुद्र पार करना है। आप किसी कागज के बण्डल का सहारा ले लें तो कुछ दूर जाने पर वह समाप्त हो जायेगा और आप डूब

जायेंगे। इसी प्रकार अन्य कोई भी साधन जो स्वयं डूबनेवाला है, कमजोर है, उसे ग्रहण करके पार जाने की आशा करना दुराशा मात्र होगी। इसी प्रकार, जो स्वयं मरणधर्मा है, नश्वर है वह आपको शाश्वत धाम नहीं दे सकता, अमरत्व नहीं दे सकता; हाँ, मृत्यु अवश्य दे सकता है। अतः एक परमात्मा का चिन्तन ही गीता का उपदेश है।

जब गीता के अनुसार देवता अशाश्वत और दुःखों की खान हैं, तो फिर उनकी पूजा क्यों होती है? इस पर श्रीकृष्ण ने बताया *(अध्याय ७/२०)*- अर्जुन! जिनकी बुद्धि कामनाओं से आक्रान्त है, ऐसे मुढ़बुद्धियुक्त लोग ही अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। वहाँ देवता नाम की कोई सक्षम वस्तु नहीं होती; किन्तु जहाँ भी- पानी में, पत्थर में, वृक्ष में लोगों की श्रद्धा झुकती है वहाँ पर मैं ही स्वयं खड़ा होकर उनकी श्रद्धा को पुष्ट करता हूँ, फल का विधान करता हूँ अर्थात् इन पूजनेवालों को फल तो मिलता है, लेकिन वह भोगने में आकर नष्ट हो जाता है। रात-दिन श्रम तो किया, लेकिन जो फल मिला वह भी नष्ट हो गया। सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

भले ही नष्ट हो जाय, कुछ काल के लिए ही सही फल तो मिलता है न! तो बुराई क्या है? इस पर अध्याय नौ में कहते हैं कि देवताओं को पूजनेवाला भी मेरी ही पूजा करता है; किन्तु वह पूजन अविधिपूर्वक है इसलिए नष्ट हो जाता है। सब कुछ त्याग करके, खून-पसीना एक करके आप पूजन में श्रम करते हैं और परिणाम यह निकला कि वह नष्ट हो गया; क्योंकि पूजन अविधिपूर्वक है। तो जब श्रम करना ही है तो विधिपूर्वक क्यों नहीं करते? रास्ता चलना ही है तो सही रास्ते से क्यों नहीं चलते?

यदि वह देवपूजन अविधिपूर्वक है तो विधि है क्या? इस पर अठारहवें अध्याय में कहते हैं कि, अर्जुन! अपने-अपने स्वभाव में पायी जानेवाली क्षमता के अनुसार नियत कर्म में लगा हुआ पुरुष (मनुष्य) जिस प्रकार भगवत्प्राप्तिरूप परमसिद्धि को प्राप्त होता है, वह विधि तू मुझसे सुन। जिस परमात्मा से सब भूतों की उत्पत्ति हुई है, जिस परमात्मा से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वभाव से उत्पन्न क्षमता के द्वारा भली प्रकार अर्चन से सन्तुष्ट करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त होता है। अतः एक परमात्मा की पूजा ही विधि है। यह पूजन भी चिन्तन की एक निर्धारित क्रिया है। जिसमें श्वास का यजन, इन्द्रियों का संयम, यज्ञस्वरूप महापुरुष का ध्यान इत्यादि क्रियाओं का समावेश है, जिनकी चर्चा योगेश्वर श्रीकृष्ण ने चौथे अध्याय के यज्ञ-प्रकरण तथा समूची गीता में स्थान-स्थान पर की है। आप इसे 'सनातन' शीर्षकवाले व्याख्यान में विस्तारित रूप से जान सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर पुनः पूछा जा सकता है।

अधिक नहीं, केवल एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा और उस परमात्मा के किसी नाम ओम् अथवा राम का यदि आप जप करते हैं, तो (धर्म को न जानते हुए भी) आप

शुद्ध धार्मिक हैं, सम्पूर्ण क्रिया को न जानते हुए भी आप क्रियावान् हैं। न इसका फल नष्ट होगा, न आप।

सम्पूर्ण गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण कहीं भी देवताओं का समर्थन नहीं करते। अध्याय नौ में वे कहते हैं कि कुछ लोग मुझे पूजकर स्वर्ग की कामना करते हैं, मैं उनको विशाल स्वर्गलोक के भोग देता हूँ; किन्तु वे- '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**' *(गीता, ९/२१)*- पुण्य क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से गिर जाते हैं। लेकिन गिरने पर भी उनका विनाश नहीं होता; क्योंकि वे विहित कर्म से चलनेवाले हैं, जो सही विधि है। अर्जुन! इस विहित कर्म में आरम्भ का नाश नहीं होता। साधक चलते-चलते कोई इच्छा कर भी ले तो भगवान उसकी पूर्ति करेंगे। वह वस्तु शाश्वत थी कब! इसलिए वस्तु तो भोगने में आ जाती है, किन्तु उस भक्त का विनाश नहीं होता; क्योंकि वह विधिपूर्वक करनेवाला है। वस्तुतः ब्रह्मा से उत्पन्न ब्रह्मलोक, देवलोक, पशु-कीट-पतंगादि लोक सभी भोग-योनियाँ हैं। केवल मनुष्य ही कर्मों का रचयिता है। जिसके द्वारा वह परमात्मा तक को प्राप्त कर सकता है, अपवर्ग साध सकता है। शरीर धारण के क्षेत्र में आप देवताओं से भी भाग्यशाली हैं, बढ़कर हैं; क्योंकि यह तन सुर-दुर्लभ है और आपको मिल चुका है। आप उनसे कौन-सी आशा करते हैं? आप देवता बन लें, ब्रह्मा की स्थिति प्राप्त कर लें, किन्तु पुनर्जन्म का सिलसिला तब तक नहीं टूटेगा जब तक मन के निरोध और विलय के साथ परमात्मा का साक्षात्कार करके उसी परमभाव में स्थित न हो जायँ। उसकी विधि है- गीतोक्त विहित कर्म, उसे भजने की निश्चित क्रिया।

सोलहवें अध्याय के अन्त में भगवान कहते हैं- अर्जुन! तू शास्त्र द्वारा निर्धारित किये हुए कर्म को कर! कौन-सा शास्त्र? कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं, '**किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः**' *(महाभारत, भीष्मपर्व, ४३/१)*- अन्य शास्त्रों के पचड़े से क्या प्रयोजन? भगवान ने स्वयं बताया, '**इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।**' *(गीता, १५/२०)*- अर्जुन! यह गोपनीय से भी अतिगोपनीय शास्त्र मैंने तेरे लिए कहा। अगले ही श्लोक में कहते हैं कि तेरे कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है इसलिए तू शास्त्र द्वारा नियत कर्म को कर। जो शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छानुसार बरतता है उसके लिए न सुख है, न परमगति है, न लोक है और न परलोक। अतः आप सब गीताशास्त्र द्वारा नियत कर्म करें। भूत-भवानी की पूजा कर अपना यह लोक और परलोक न बिगाड़ें।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के उपर्युक्त निर्देश पर अर्जुन ने जानना चाहा कि जो लोग शास्त्रविधि को त्यागकर किन्तु श्रद्धापूर्वक भजते हैं, उनकी कौन-सी गति होती है?

भगवान ने बताया, अर्जुन! यह पुरुष श्रद्धामय है, कहीं-न-कहीं इसकी श्रद्धा अवश्य होगी। शास्त्रविधि को त्यागकर भजनेवालों की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है- सात्विकी श्रद्धावाले देवताओं को, राजसी श्रद्धावाले यक्ष-राक्षसों को और तामसी श्रद्धावाले भूत-प्रेतों को पूजते हैं। ये तीनों केवल पूजते ही नहीं, अथक परिश्रम करते हैं, घोर तप को तपते हैं; किन्तु अर्जुन! ये तीनों प्रकार की श्रद्धावाले शरीररूप में स्थित भूतसमुदाय को और अन्तःकरण स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा को कृश करनेवाले हैं। मुझसे दूरी पैदा करते हैं, न कि भजते हैं। अर्जुन! इन सबको तू असुर जान।- अर्थात् देवी-देवता को पूजनेवाले भी असुर हैं।

असुर का मतलब क्या दो सींगवाला, बड़े-बड़े दाँतोंवाला कोई अजीब-विचित्र जीव? नहीं, परमदेव परमात्मा के देवत्व से जो वंचित रहनेवाला है, वह असुर है। श्रीकृष्ण के अनुसार, दुनिया में मनुष्य दो प्रकार का है- एक देवताओं-जैसा, दूसरा असुरों-जैसा। दैवी सम्पद् नामक गुणों को धारण करनेवाला देवताओं-जैसा है और आसुरी सम्पद्वाला, दुर्गुणों को धारण करनेवाला पुरुष असुरों-जैसा है। आपका एक सगा भाई देवता और दूसरा सगा भाई असुर हो सकता है। अस्तु, योगेश्वर कहते हैं कि इन सबको तू असुर जान! इससे अधिक कोई क्या कहेगा?

बन्धुओ! आपने इतना श्रम भी किया, शास्त्रविधि को त्यागकर इतना तप भी तपा, लेकिन परिणाम यह निकला कि उस परमदेव के देवत्व से वंचित हो गये, 'असुरजान'- असुर हो गये। जिस आत्मा को, परमात्मा को प्रसन्न करना था वह और भी दुर्बल और दूर हो गया। जब श्रम ही करना है तो इस तरीके से करें जिससे वह परमात्मा आपके अनुकूल हो, प्रतिकूल नहीं। क्यों न शास्त्रविधि से, नियत किये हुए कर्म को करें? अतः जिसके ये सभी अंशमात्र हैं, उस मूल एक परमात्मा का भजन करें। इसी पर श्रीकृष्ण ने बारम्बार बल दिया है। एक परमात्मा का चिन्तन गीता का मूल उपदेश है।

अब इस चिन्तन का अधिकारी कौन है? 'हम तो बड़े पापी हैं, अर्जुन-जैसा भाग्य हमारा कहाँ!'- कहीं ऐसी धारणा न बना लें, कहीं आप हताश होकर बैठ न जायँ, इसलिए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। *(गीता, ९/३०)*

अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य अर्थात् अन्य न, मुझे छोड़कर अन्य किसी देवता को न भजते हुए केवल मुझे भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। **'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।'** ***(गीता, ९/३१)-*** इस प्रकार लगने से वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है, परमधर्म

परमात्मा से संयुक्त अन्तःकरणवाला हो जाता है और सदा रहनेवाली शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

अतः आप अत्यन्त दुराचारी या दुराचारियों के सिरमौर ही क्यों न हों, (अन्य बहुत से दुराचारों की योजना भी क्यों न बनाते हों) यदि एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा और उस परमात्मा की प्राप्ति की क्रिया (यज्ञ की प्रक्रिया) नियत कर्म में श्रद्धा के साथ लगते हैं तो आप शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाएँगे। **'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।'** *(गीता, ९/३१)*- अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अस्तु! अन्य किसी को पूजने का विधान नहीं है।

ठीक है, एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा स्थिर हो गयी, धर्माचरण के लिए तैयार भी हो गये; किन्तु उस एक परमात्मा को खोजें कहाँ? क्या तीर्थों में, मन्दिरों में? भजन किया जाय तो कहाँ पर किया जाय? इस पर कहते हैं-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। *(गीता, १८/६१)*

अर्जुन! वह ईश्वर सम्पूर्ण भूतप्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। जब इतना समीप है तो दिखता क्यों नहीं?- तब बताते हैं कि मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर सबलोग भ्रमवश भटकते रहते हैं इसलिए नहीं देख पाते। तो क्या करें, शरण किसकी जायँ?

गीता के १८/६२ श्लोक में कहते हैं, **'तमेव शरणं गच्छ'**- अर्जुन! उसी हृदय-देश में स्थित ईश्वर की शरण जाओ। **'सर्वभावेन'**- सम्पूर्ण भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि आधा भाव देवी में तो चौथाई देवता में। सम्पूर्ण हृदय से समर्पित हो जाओ। इससे लाभ? तब कहते हैं, **'तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।'**- उसकी कृपा-प्रसाद से तुम परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे। उस स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, सदैव है। अतः परमात्मा के शोध की स्थली हृदय-देश है, बाहर कहीं नहीं।

किन्तु समस्या तो यह है कि वह हृदयस्थ ईश्वर आरम्भ में दिखाई नहीं देता। हृदयस्थ ईश्वर की शरण जायँ तो कैसे जायँ? तो अगले ही श्लोक में कहते हैं- अर्जुन! गोपनीय से भी अतिगोपनीय एक बात और सुन! भला वह गोपनीय बात है क्या?

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। *(गीता, १८/६५)*

अर्जुन! तू मेरे में अनन्य मनवाला हो, मेरा अनन्य भक्त हो, मेरे प्रति श्रद्धा से पूर्ण हो मेरे को नमन कर! मेरे द्वारा निर्दिष्ट कर्म को कर! ऐसा करने से तू मेरे को ही प्राप्त होगा।

पहले बताया था- तत्त्वदर्शी की शरण में जा, अभी बताया- ईश्वर हृदय-देश में है उसकी शरण में जा, शाश्वत स्थान प्राप्त करेगा। यहाँ कहते हैं, मेरी शरण में आ। वास्तव में योगेश्वर श्रीकृष्ण और भगवान एक दूसरे के पूरक हैं। शाश्वत धाम को पाना और सद्गुरु जिस परमात्म-भाव में स्थित है, उसे पाना एक ही बात है। इसलिए सद्गुरु की शरण नितान्त आवश्यक है। सद्गुरु ही भगवान के धाम में प्रवेश की कुञ्जी हैं। भगवान हैं, किन्तु सद्गुरु के अभाव में वह हमारे दर्शन और प्रवेश के लिए नहीं। श्रीकृष्ण एक योगेश्वर थे, सद्गुरु थे- यह बात आसानी से गले के नीचे उतरती नहीं, इसीलिए योगेश्वर पुनः बल देते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। *(गीता, १८/६६)*

अर्जुन! सारे धर्मों को त्यागकर एक मेरी शरण को प्राप्त हो, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त करा दूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू निश्चय ही मेरे स्वरूप को प्राप्त होगा। तू शोक मत कर।

प्रत्येक महापुरुषों ने यही कहा। भगवान राम कहते हैं- '**भगति मोरि**'। इसी क्रम में बौद्ध कहते हैं- '**बुद्धं शरणं गच्छामि।**' जैन कहते हैं- '**सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः**' *(तत्वार्थ सूत्र, १/१)*- तीर्थंकरों का दर्शन, उनका बताया ज्ञान और उनकी तरह चरित्र-निर्माण मोक्ष का साधन है। सिख कहते हैं- 'वाहे गुरु'। इस्लाम कहता है- मुहम्मद साहब अल्लाह के रसूल हैं। ईसा कहते हैं- "संसार के भार से दबे लोगों मेरे पास आओ! मैं तुम्हें विश्राम दूँगा।" पूज्य महाराजजी कहते थे- "हो हम भगवान के दूत हैं। हमसे मिले बिना कोई भगवान से नहीं मिल सकता।" सभी तो आपको बुला रहे हैं। किसके-किसके पास जाएँगे आप? महापुरुषों के इन कथनों का आशय मात्र इतना ही है कि अपने समकालीन किसी तत्त्वदर्शी की शरण ग्रहण करें।

अतः एक परमात्मा के प्रति समर्पण और उसी के पकड़वाले कोई महापुरुष हों उनका सान्निध्य, उनकी सेवा तथा उस परमात्मा का परिचायक दो-ढाई अक्षर का नाम चुन लें- राम अथवा ओम् जो भी अभिमत हो। क्षण में राम, क्षण में ओम् ऐसा अदले-बदले नहीं, कोई एक नाम चुन लें, सबका अर्थ एक है, परिणाम एक है- बस इतना ही आपको करना है। यदि आप हिन्दी नहीं जानते, तो जो कण-कण में व्याप्त उस एक ईश्वर का परिचायक हो, ऐसा कोई छोटा-सा दो-ढाई अक्षर का नाम ग्रहण कर लें। जब नाम के सूक्ष्म सतहों में पहुँच हो जायेगी, तब यही छोटा-सा नाम श्वास में ढला मिलेगा।

श्रीरामचरितमानस के अनुसार इष्ट कौन है?

अब आइये श्रीरामचरितमानस के आलोक में विचार करें कि इष्ट कौन है? भजन किसका करना चाहिए? 'मानस' जिनके हृदय की उपज है उन भगवान शंकर का निर्णय है-

धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना।।
(७/१२६/२-३)

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत।। *(७/१२७)*

वही नीति में निपुण है, वही विद्वान् है, वेदों का सार उसने भली प्रकार पहचाना है, वही कुलीन है जिसका मन एकमात्र राम के चरणों में अनुरक्त है।

सम्पूर्ण रामायण में आरम्भ से लेकर अन्त तक एक ही बात को बार-बार पुष्ट किया गया है कि भजन हम किसका करें। वनवासकाल का प्रसंग है- भगवान राम शृंगवेरपुर में शयन कर रहे थे। कुश और किसलय की कोमल साथरी पर उन्हें सोया देख निषादराज गुह को महान् कष्ट हुआ। उन्होंने बगल में बैठे लक्ष्मण से कहा, ''कैकेयी बड़ी कुटिल थी, जिसने रघुनन्दन राम और जानकी को सुख के अवसर पर दुःख दे डाला।'' लक्ष्मण ने कहा- यह बात नहीं है-

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निजकृत करम भोग सबु भ्राता।।
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।
(२/९१/४-५)

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।
(२/९१/७-८)

धरणी, धाम, धन, पुर, परिवार, जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, स्वर्ग-नरक- इनके विषय में कहना-सुनना-गुनना मोह का मूल है। लोग स्वर्ग की कामना करते हैं तो वह भी मोह का मूल है, परमार्थ का वहाँ प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। तो परमार्थ क्या है? परमार्थ है केवल एक, परम पुरुष परमात्मा का चिन्तन-

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।। *(२/९२/६)*

इस प्रकरण में बताया गया कि स्वर्ग और नरक का व्यवहार मोह का मूल है, उद्गम है और आप स्वर्ग के अधिकारी देवताओं की पूजा करके मोह से मुक्त होना चाहते हैं! कितनी विसंगति है।

(क)

हम देवता परम अधिकारी।
स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।। *(६/१०६/११)*

हम देवता लोग परम अधिकारी थे; लेकिन विषयों के वश में होकर आपकी भक्ति को भूल गये। हम देवता परम 'दुखु पायो।'- एक होता है दुःख और एक परम दुःख, उस परम दुःख से देवता भी आक्रान्त हैं। देवता भी विषयों के वश में हैं। आप उनकी सेवा करते हैं तो विषयों की सेवा करते हैं।

(ख)

बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना। *(१/५/४)*
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू।। *(१/५/६)*
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा।। *(१/५/६)*

अर्थात् विधाता का प्रपंच गुण और अवगुणों से सना है। प्रपंच क्या है? पाप और पुण्य, सुजाति और कुजाति, सुन्दर जीवन अमृत, जहरीला जीवन मृत्यु, स्वर्ग और नरक यही सब विधाता का प्रपंच है। स्वर्ग और स्वर्ग निवासी देवता प्रपंच हैं। शास्त्रों में आप्तकाम महापुरुषों ने इसी का विभाजन किया था। यदि आप देवताओं की पूजा करते हैं तो प्रपंच की पूजा कर रहे हैं। यह इसी संसार के गुण-दोषों का चित्रण मात्र है। संसार से अलग न कोई देवता है न स्वर्ग!

(ग)

गरुड़ को मोह हो गया। वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने मन में विचार किया कि गरुड़ को तो मैंने बनाया, भगवान की माया ने जब स्वयं मुझ तक को अनेकों बार नचाया, तब पक्षिराज को मोह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है- **'बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा।'** *(७/५९/४)* देवताओं के पितामह ब्रह्मा ही जहाँ नाच रहे हैं तो क्या देवता आपको माया से बचा लेंगे?

सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा।
नाच नटी इव सहित समाजा।। *(७/७१/२)*

वही माया भगवान के संकेतमात्र से नटी की तरह नाचती है। माया से विवश होकर नाचनेवालों की आप पूजा करते हैं। जब करना ही है तो उसकी पूजा करें, जिसके संकेत पर स्वयं माया नाचती है। गरुड़जी कहते हैं- वह माया रघुवीर की दासी है और वह राम की कृपा के बिना छूटती ही नहीं, यह मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ। अतः उन एक परमात्मा का भजन करें जो मायाधीश हैं, जिनके लिए मानस में बारम्बार संकेत किया गया है।

(घ)

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।। *(७/६३/७)*

देवता, मनुष्यादि चराचर जगत् काल का कलेवा है। देवता भी काल का कलेवा है, जलपान की सामग्री है। आप कलेवा का भजन क्यों करते हैं? **'भजसि न मन तेहि राम को, कालु जासु कोदण्ड।'** *(लंकाकाण्ड, दोहा, मंगलाचरण)*; **'भुवनेस्वर कालहु कर काला।'** *(५/३८/१)* काल के भी काल, जगत् के स्वामी भगवान राम का भजन क्यों नहीं करते? जो स्वयं मरणधर्मा है, वह आपको मृत्यु दे सकता है, मृत्यु से बचा नहीं सकता।

(ङ)

देवता आपके मनोगत भाव भी जानने में सक्षम नहीं हैं। देवर्षि नारद हिमालय की गुफा में तपस्यारत थे। देवताओं के राजा इन्द्र को लगा कि नारदजी तपस्या करके उनका पद (इन्द्र-पद) लेना चाहते हैं। देवताओं के राजा को इतना भी नहीं मालूम कि नारद किसलिए भजन कर रहे हैं? क्या वे आपकी मनोकामना पूरी करेंगे?

(च)

भगवत्-पथ में यदि कोई रुकावट है तो देवता हैं। नारद ही नहीं, जो भी भजन में अग्रसर हुआ, देवताओं ने उसे गिराने का भरपूर प्रयास किया। सामान्य मानव को भी वे इस पथ पर जाने नहीं देते-

इन्द्रीं द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

(७/११७/११-१२)

इन्द्रियों के द्वार हृदयरूपी घर के अनेकों वातायन हैं। प्रत्येक झरोखों पर देवता अड्डा जमाकर बैठे हैं। ज्योंही वे विषयरूपी हवा को आते देखते हैं त्योंही वे देवता हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं। व्यक्ति विषयों में उलझ जाता है। इन्द्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान अच्छा नहीं लगता। इन्हीं से तो आपको लड़ना है। ये विकार हैं, अवरोध हैं। यदि इन्हें पूजते हैं तो आप विकार पूज रहे हैं, अवरोध पूज रहे हैं। अवरोधों को तो हटाना चाहिए न!

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता।।
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।

(१/११६/५-६)

विषय, इन्द्रियाँ, उनके देवता और जीवात्मा- ये सब (अवरोही क्रम से) एक की सहायता से एक क्रियाशील होते हैं और इन सबके ऊपर जो परम प्रकाशक हैं वही

अनादि अवधपति राम हैं। देवता भी जिसका प्रकाश लेकर प्रकाशित होते हैं, उस मूल परमात्मा का आप चिन्तन करें।

(छ)

देवता त्रिकालज्ञ भी नहीं हैं। राम-रावण युद्ध का सन्दर्भ है- भयंकर युद्ध चल रहा था, रावण मरने ही वाला था। देवता भी इस युद्ध को देख रहे थे। वे किसी का पक्ष नहीं ले रहे थे। वे **'बिकल बोलहिं जय जये।'** *(६/१०१/छन्द)*- 'जय हो, जय हो' की ध्वनि कर रहे थे। पता नहीं कौन जीते? राम की जय- ऐसा कहने में खतरा था। राम की विजय निश्चितप्राय हो जाने पर ही युद्ध के अन्तिम दिनों में देवराज ने अपना रथ सहायता में भेजा और रावण के मरते ही 'सदा स्वार्थी' देवता पहुँच गये, उनके पितामह तक चले आये। कहने लगे-

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए।।
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।
(६/११०/छन्द)

प्रभो! ये वानर कृतकृत्य हैं जो आपके मुखारविन्द का दर्शन कर रहे हैं। हम देवताओं के शरीर को धिक्कार है जो आपकी भक्ति के बिना भव में भूले पड़े हैं। जो स्वयं रास्ता भूल गया है, क्या वह आपको रास्ता बतायेगा? देवताओं ने कहा-

भव प्रबाहँ संतत हम परे।
अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।। *(६/१०६/१२)*

जो स्वयं बह रहा है, क्या वह आपको पार उतारेगा? (वह जानता तो खुद न पार उतर जाता।) जो स्वयं भव-प्रवाह से अपने को बचाने के लिए त्राहि-त्राहि कर रहा है कि हमें पार कर दो, वह आपको क्या पार करेगा? वह आपके ऊपर चढ़ बैठेगा और कदाचित् पार भी हो जाय, किन्तु आप किस घाट लगेंगे? अतः देवता भी जिनसे शरण माँगते हैं आप सीधे उन्हीं भगवान को पकड़ें। जो देवता स्वयं अपनी विपत्ति में फँसा है वह आपकी कौन-सी सहायता करेगा?

(ज)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने देवताओं का समर्थन कहीं नहीं किया। **'माया-बिबस बिचारे'** *(विनयपत्रिका, पद १०१)*- वे माया से विवश हैं, बेचारे हैं- उनके पास चारा नहीं है, तो आप क्यों जाते हैं उनके पास? देवता आपका इष्ट नहीं है।

(झ)

देवताओं का पराक्रम कितना है, गोस्वामीजी ने मानस में स्थान-स्थान पर चित्रित किया है-

रावन आवत सुनेउ सकोहा।
देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।। *(१/१८१/६)*

रावण को क्रोधित आते सुना भर था, (लड़ना तो दूर, केवल सुना था कि क्रोधित होकर आ रहा है।) **'देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।'**- देवता मेरु पर्वत की कन्दराओं में जाकर छिप गये। लेकिन देवियाँ कहाँ तक भागतीं! रावण ने उन सबको पुष्पक विमान में बैठा लिया।

देव जच्छ गंधर्ब नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल, बहु सुन्दर बर नारि।। *(१/१८२ ख)*

अपनी भुजाओं के बल से इन सबको जीता, इनका वरण किया और निशाचरों में वितरित करके उन्हें देवलोक-जैसी सुख-भोग की व्यवस्था देकर सुखी किया। देवताओं ने सुना कि परिवार तो रावण के यहाँ कैद है तो बिना परिवार के अकेले जी कर के ही क्या करते? उन्हें छुड़ाने लंका पहुँच गये, रावण उन्हें भी सेवा-कार्य में नियुक्त कर लिया। **'कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।'** *(५/१६/७)* सभी हाथ जोड़कर विनीत भाव से खड़े रहते थे। भृकुटि देखते रहते थे कि कहीं उठने-बैठने में चूक न हो जाय, कहीं आदेश-पालन में देर न हो जाय, कहीं रावण नाराज न हो जाय।

रबि ससि पवन बरुन धनधारी।
अगिनि काल जम सब अधिकारी।। *(१/१८१/१०)*

सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, यमराज, कुबेर और देवताओं के सभी अधिकारी रावण की आज्ञा का पालन करते थे, भयभीत रहते थे और प्रतिदिन उपस्थित होकर रावण के चरणों में नमन करते थे। जो पहुँच नहीं पाता था, वह घर से ही प्रार्थना कर लेता था कि कोई शिकायत न कर दे। यह तो देवताओं का अस्तित्व था, फिर भी हम पूजा करते हैं।

(ञ)

आइये उन प्रकरणों पर भी विचार करें, जिनमें देवताओं से सहायता की याचना की गयी। हम देखने का प्रयास करें कि उन्होंने कौन-सी सहायता की? एक बार निशाचरों के आतंक से त्रस्त पृथ्वी गाय का रूप धारण कर देवताओं के पास गयी कि मेरी रक्षा करो! उन्होंने उत्तर दिया कि हम तुम्हारे कष्ट-निवारण में असमर्थ हैं। पृथ्वी के साथ सुर, मुनि, गन्धर्व सभी देवताओं के पितामह ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने सब जान लिया कि ये क्यों आये हैं। मन में अनुमान लगाया कि मेरा भी तो कोई वश नहीं है। बोले- जिसकी तू दासी है, वे अविनाशी हैं- उनका कभी विनाश नहीं होता। वे अजर,

अमर, शाश्वत और अमृतस्वरूप हैं- उन्हीं की प्रार्थना करो। वे ही तुम्हारे-हमारे सभी के सहायक हैं।

समस्या थी, उन परमात्मा को ढूँढ़ा कहाँ जाय? **'पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।'** *(१/१८४/२)* कोई देवता उन्हें बैकुण्ठ चलने के लिए प्रेरित कर रहा था, तो कोई कह रहा था कि क्षीरसागर में भगवान रहते हैं। उसी समाज में शंकरजी भी थे, किन्तु उन्हें बोलने का अवसर ही नहीं मिल पा रहा था। किसी प्रकार एक वचन कहने भर के लिए अवसर मिला, **'अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।'** *(१/१८४/४)*- तो वे बोले-

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।। (१/१८४/५)
अग जगमय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।। (१/१८४/७)

भगवान शंकर ने अपना जाना हुआ उपाय बताया कि भगवान कण-कण में समान रूप से व्याप्त हैं। सम्पूर्ण हृदय से मन को समेटकर उनके चरणों में लगा दो, वे तुरन्त प्रकट हो जायेंगे। उनका मत सबको स्वीकार हो गया। ब्रह्मा ने भी समर्थन दिया। उस विधि से स्तवन होते ही आकाशवाणी हुई कि तुम लोगों का दुःख हम दूर करेंगे।

इन समस्त प्रकरणों में देवताओं ने कौन-सा निर्णय दिया और कौन-सी सहायता की? जिनको यह भी ज्ञात नहीं है कि भगवान का चिन्तन किस प्रकार किया जाता है, वे आपका कौन-सा मार्गदर्शन करेंगे? परमकल्याण का रास्ता जिनको मालूम नहीं है, भला वे कल्याण क्या करेंगे?

दोष किसका? फिर भी हम उसी का पीछा करते हैं। कितनी बड़ी जड़ता है। इस जड़ता का स्रोत क्या है? इसमें किसका दोष है? क्या हमारा दोष है? नहीं, हमारा भी कोई दोष नहीं है। यह हमको विरासत में मिली रीति है। बाल्यकाल से ही माताओं को, पास-पड़ोस को, भाई-बन्धुओं को कुछ-न-कुछ पूजा-पाठ करते हुए देखते हैं। बचपन से ही हमारे मन-मस्तिष्क में उस पूजा-पद्धति की अमिट छाप पड़ जाती है, इसीलिए लाख समझाने पर भी हम समझ नहीं पाते। समझना नहीं चाहते। प्रायः मातायें अबोध बच्चों को धूप-अगरबत्ती इत्यादि जलाकर कभी पीपल के नीचे, कभी कहीं बैठा देती हैं। कहती हैं- ''हाथ जोड़ ले! यह बरम बाबा हैं, यह ग्राम-देवी हैं। इनको इस तरह से प्रणाम कर!'' बालक उसी को पकड़ लेता है। बालक के कोमल, निर्मल चित्त पर आरम्भिक वर्षों के वे संस्कार आजीवन उसका पिण्ड नहीं छोड़ते। बचपन में जो बच्चा

भयभीत हो जाता है, वह जीवनपर्यन्त भयभीत ही रहता है। एकान्त, अँधेरे में जाते डरता है। पत्ते तक से भी भय खाता है। दस-पन्द्रह देवी-देवता तो उसे बचपन से ही पकड़ा दिये जाते हैं। समय आने पर कदाचित् वह छोड़ भी दे, तब भी कुछ-न-कुछ शंकालु बना ही रहेगा। अतः माता-पिता लोगों से मेरा निवेदन है कि वे अपने बच्चों का भविष्य अन्धकारमय न बनावें।

(ट)

ठीक इसी प्रकार माता सीताजी को भी देवी-देवताओं की पूजा विरासत में मिली थी- **'गिरिजा पूजन जननि पठाई।'** *(१/२२७/२)* सीता वहाँ आती-जाती थीं। स्वयंवर का आयोजन चल रहा था। एक दिन सीताजी गिरिजा का पूजन करके लौट रही थीं कि उसी वाटिका में राम दृष्टि में छा गये। पूजन करके लौट रही थीं, किन्तु पुनः गिरिजा के पास गईं, हाथ जोड़कर बोलीं, ''माँ, आज तक जो हमने आपकी सेवा की, उससे प्रसन्न होकर यही साँवला वर देने की कृपा करें।''

पार्वतीजी ने अपनी ओर से कोई आशीर्वाद नहीं दिया। आवाज आई- **'नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा।।'** *(१/२३५/८)* देवर्षि नारद जो गुरु थे, उनका वचन सत्य है, निर्दोष है। वही वर तुम्हें मिलेगा, जिसमें तुम्हारा मन रमा है। देवर्षि नारद ने जो कभी सीता से कहा था, पार्वती ने मात्र उसी की स्मृति दिला दी। सीता आश्वस्त हुईं।

धनुष-यज्ञ की स्थली पर पहुँचकर जब सीता ने उस विशाल धनुष पर दृष्टिपात किया, जिसे तोड़ने में दस हजार राजा असफल रहें, तो वे अधीर हो उठीं कि ये सुकुमार इसे कैसे तोड़ पायेंगे? देवी-देवताओं को मनाने लगीं-

तब रामहि बिलोकि बैदेही।
सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही।। *(१/२५६/४)*

जो भी उन्हें याद आया, छोटे-से लेकर बड़े तक, सबकी प्रार्थना करने लगीं। जैसे- **'होहु प्रसन्न महेस भवानी।'** *(१/२५६/५)*- शंकरजी को मनाने लगीं, उनको छोड़कर भवानी को मनाने लगीं, जिनसे वरदान माँगा था। वहाँ भी स्थिर न रह सकीं- **'गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा।।'** *(१/२५६/७)*- आज तक आपकी भी बड़ी सेवा की है। आप ही ध्यान दें। हमारी विनय सुनें और चाप को हल्का कर दें। उन्हें भी छोड़ दिया। **'सुर मनाव धरि धीर'** *(१/२५७)*- देवताओं को मनाने लगीं। धनुष तक की प्रार्थना करने लगीं कि कोई नहीं सुन रहा है। अब तो चाप! आपका ही भरोसा है, आप स्वयं हल्के हो जाइये; किन्तु अभी से हल्के न हो जाइएगा अन्यथा कोई भी तोड़ देगा। राम को आता देखकर ही हल्का होइएगा।

कहीं भी सफलता न देखकर सीताजी ने सारे देवी-देवताओं से चित्त हटाकर एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर किया- उस परमात्मा में, जो सबके हृदय में रहता है।

तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा।।
तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी।।
(१/२५८/४-५)

यदि मन-क्रम-वचन से मेरा प्रेम सच्चा है और राम के चरण-कमलों में निवास करता है तो वह भगवान हमें राम की दासी बना दें। हृदयस्थ एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर होते ही **'कृपानिधान राम सबु जाना।'** *(१/२५८/७)*- उन अन्तर्यामी ने जान लिया कि अब सच्चे स्थान पर पूजा कर रही है। इसके उपरान्त ही किसी देवी-देवता के पास जाना नहीं पड़ा सीता को- **'तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।'** *(१/२६०/८)* राम ने धनुष तोड़ दिया। सीता को सफलता मिली। अस्तु, हम जो विविध पूजाएँ करते हैं, वह विरासत में मिली हैं, लेकिन सफलता तभी मिलेगी जब एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर होगी।

(ठ)

ठीक इसी प्रकार की पूजा माता कौशल्या ने की थी। राम का राज्याभिषेक सुनकर वे आनन्दमग्न हो गयीं, पूजा-गृह में चली गयीं। **'पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।'** *(२/७/५)*- उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों का विशाल आयोजन (वैभव) के साथ पूजन किया। उन्हें बलि चढ़ाने की मनौती मानीं कि यदि हमारा कार्य सिद्ध हो गया तो आप सबको बलि-भोग दूँगी।

अभी तक देवताओं को राज्याभिषेक की सूचना नहीं थी; किन्तु ग्रामदेवियों को कौशल्या द्वारा इसका पता चला तो उन्होंने देवताओं को और देवताओं ने इन्द्र को सूचना दी। वे तुरन्त सरस्वती के पास गये।

सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं।। *(२/१०/८)*
बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुरकाजु।। *(२/११)*

हे माता! हमारे ऊपर बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। आप ऐसा कुछ कीजिए कि राम वन चले जायँ और देवताओं का काम हो जाय। प्रार्थना-पत्र दिया था कौशल्या ने कि हमारा कार्य पूर्ण हो जाय, लेकिन देवताओं ने कहा कि माता! हम देवताओं का कार्य हो जाय। उनको कर्म के सहारे छोड़िये। आप देवताओं का हित देखिये।

सरस्वती बोलीं, ''किसी शुभ कार्य में विघ्न डलवाते तुम्हें शर्म नहीं आती। राम के वन जाने से उन्हें कितना कष्ट होगा? अवध अनाथ हो जायेगा, लोग मुझे क्या कहेंगे?

देवता विनय करते ही रह गये- **'जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी।।'** *(२/११/४)*- अयोध्यावालों की चिन्ता आप क्यों करती हैं? वे तो जीव हैं। कर्म के अनुरूप सुख-दुःख भोगते ही रहते हैं, उन्हें भोगने दें और देवताओं के हित के लिए (कौशल्या के हित के लिए नहीं) कौशलपुर जायँ। जबकि उन्हीं देवताओं की पूजा कौशल्या ने की थी। ऐसे देवताओं से आप कौन-सी आशा लगाये बैठे हैं? आप उसकी पूजा क्यों नहीं करते जिसके लिए गोस्वामीजी ने बल दिया है, जिसका नाम **'मेटत कठिन कुअंक भाल के।'** *(१/३१/६)*, जिसकी आराधना से कर्मों का बन्धन कट जाता है।

सरस्वती को हिचकते देख देवता बार-बार उनके चरणों में गिरकर निवेदन करने लगे- **'बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची।।'** *(२/११/५)* बेचारी संकोच में पड़ गयीं। रास्ते भर विचार करती रहीं कि देवताओं की बुद्धि कितनी खोटी है। **'ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।'** *(२/११/६)*- इनका निवास बहुत ही ऊँचा है लेकिन करनी बड़ी खोटी है। ये किसी की वृद्धि नहीं देख सकते। जिनमें इतनी ईर्ष्या है, जलन है, क्या यही आपके आदर्श हैं?

हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई।
जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई।। *(२/११/८)*

देवताओं की माता सरस्वती अयोध्या में आ रही थीं। कितना सौभाग्य था अवध-वासियों का! किन्तु गोस्वामीजी कहते हैं- नहीं, **'जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई।'**- जैसे विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा। कहते हैं, शनि सबसे दुष्ट ग्रह है जो साढ़े सात वर्ष तक कष्ट देता है किन्तु सरस्वती तो चौदह साल की दुर्दशा लेकर आयीं। राम कल्याण-स्वरूप थे, उनका क्या कल्याण करेंगी? वे तो देवताओं का भी कल्याण करने आये थे। पूजा की थी कौशल्या ने, उसे क्या मिला? जीवनभर का वैधव्य और दुःख!

नामु मन्थरा मन्दमति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि।। *(२/१२)*

मन्थरा नाम की एक मन्दबुद्धि दासी थी, उसके मस्तिष्क में प्रवेश कर उसकी बुद्धि को विकृत कर सरस्वती लौट गयीं। आप ध्यान दें कि बुद्धिमान् और विवेकी लोगों पर इन देवी-देवताओं का प्रभाव नहीं पड़ता। केवल मन्दबुद्धिवाले ही देवी-देवताओं से प्रभावित होते हैं।

देवी-देवताओं का ऐसा ही चरित्र उस समय देखने को मिलता है जब भरतजी श्रीराम को लाने चित्रकूट जाते हैं। देवता प्रयास करते हैं कि राम और भरत का मिलन ही न हो। इनके कुत्सित चरित्र की पराकाष्ठा भरत-राम सम्वाद के अवसर पर देखकर मानसकार कहते हैं- **'मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत।'** *(२/३०१)*- इन्द्र

कितना मलिन है कि पहले से ही दुःखी अयोध्या और जनकपुर के निवासियों को और भी कष्ट दे रहा है मानो मरे हुए को मारकर अपना मंगल चाहता है।

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू।।
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती।।
(२/३०१/१-२)

देवराज इन्द्र कपट और कदाचार की सीमा है। उसे परायी हानि और अपना लाभ ही प्रिय है। ऐसे देवताओं से आप लाभ की आशा करते हैं! उस सभा में भी देवताओं ने बुरे विचार, कपट, भय और उच्चाटन का प्रवेश करा दिया। यही उनकी देवमाया है। यही गुण आप उनसे सीख सकते हैं। इस देवमाया के शिकार कौन-कौन हुए?-

भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि, जथाजोगु जनु पाइ।। *(२/३०२)*

भरतजी, जनकजी, मुनि लोग, मन्त्री लोग, साधु-सन्त और बुद्धिमान् इतने लोगों को छोड़कर अन्य सभी पर, जिसका जैसा बुद्धिस्तर था उस पर वैसे ही देवमाया लग गयी। स्पष्ट है कि केवल मन्दबुद्धिवालों पर ही देवताओं का प्रभाव चल पाता है।

सरस्वती मन्थरा के पास आयीं तो मन्थरा को क्या मिला? सरस्वती की कृपा से ही मन्थरा की बुद्धि विकृत हो गयी। वह अनाप-शनाप सोचने लगी। षड्यन्त्र का सूत्रधार उसे बनना पड़ा और अन्त में लात खानी पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू।
दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू।। *(२/१६२/५)*

उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फट गया, दाँत टूट गये, मुँह से खून बहने लगा। इतने पर भी उसकी दुर्दशा का अन्त नहीं हुआ, उसका झोंटा पकड़-पकड़कर घसीटा गया। जिसके कण्ठ में देवताओं की माता सरस्वती बैठ गयी हों उसका सम्मान बढ़ जाना चाहिए था; किन्तु वह ऐसी अभागिन निकली कि इसके पश्चात् सम्पूर्ण रामायण में उसका नाम तक नहीं आया और आज तक कोई भी अपनी कन्या का नाम मन्थरा रखने का साहस नहीं जुटा पाता। मन्थरा तो एक प्रतीक है, उन मन्दबुद्धिवालों की प्रतिनिधि है जो देवी-देवताओं की पूजा करते आये हैं। इसका परिणाम चित्रित कर गोस्वामीजी आपको कौन-सा सन्देश दे रहे हैं? क्या आपने कभी विचार किया कि पूजनीय कौन है?

(ड)

रामचरितमानस में सरस्वती का प्रयोग तीन अवसरों पर दिखाया गया है- एक तो इसी मन्थरा-प्रसंग में; दूसरा अवसर तब आया जब देवताओं ने भरत की बुद्धि विकृत करने की प्रार्थना की, जिससे देवताओं का परिवार सुखी रहे। किन्तु सरस्वती

बिगड़ गयीं कि हजार नेत्र रखकर भी तुझे सुमेरु पर्वत नहीं दीखता? कौन-सा सुमेरु था भरत के भीतर? **'भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू।।'** *(२/२६४/७)* भला वहाँ भी कहीं अन्धकार जाता है, जहाँ सूर्य का भलीभाँति प्रकाश है? तो भरत में कौन-सा प्रकाश है? भरत के हृदय में राम और सीता का निवास (प्रकाश) है। वहाँ मेरी कपट और चतुराई नहीं चलेगी। कौन है अन्धकार? देवता! प्रकाश क्या है? एक परमात्मा! इस स्थल से दूसरी बात यह भी स्पष्ट होती है कि जिसके हृदय में भगवान का निवास है, देवता उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं। अतः मन-क्रम-वचन से आप एक परमात्मा के प्रति समर्पित हो जायँ। यदि आप उन्हें हृदय से देखेंगे तो हृदय के स्वामी भी आपको देखेंगे, आपकी रक्षा की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले लेंगे।

तीसरे अवसर पर हम सरस्वती को कुम्भकर्ण के पास जाते देखते हैं। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा वर देने पहुँचे। ब्रह्मा ने विचार किया कि यह दुष्ट कुछ भी न करे, केवल बैठकर भोजन मात्र ही करे तो यह संसार उजड़ जायेगा, अतः **'सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी।।'** *(१/१७६/८)*- सरस्वती को बुलाया, उसकी बुद्धि विकृत करा दी और वह छः महीने की नींद माँग बैठा। कुम्भकर्ण में सरस्वती का प्रवेश उसकी मृत्यु का कारण बना। देवताओं की पूजा से कौन-सा कल्याण और किसका हो गया?

(ढ)

वर्तमान समय में समस्त देवताओं में से तीन देवता अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं- ब्रह्मा, विष्णु और महेश। महाराज मनु घर-द्वार छोड़कर तपस्या करने नैमिषारण्य पहुँचे और चिन्तन में लग गये। उनका लक्ष्य क्या था? वे उपासक किसके थे? वे मन-ही-मन विचार कर रहे थे- **'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।।'** *(१/१४३/६)* वे भगवान जिनके अंशमात्र से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु और शंकर पैदा होते हैं, **'ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।'** *(१/१४३/७)*- ऐसे भगवान भी सेवक के वश में होते हैं, सेवक के लिए उपलब्ध रहते हैं तो मैं उन्हीं का भजन करूँगा। वे मेरी अभिलाषा पूरी करेंगे। मनु चिन्तन में रत हो गये। साधन में कुछ वेग आया, साधना कुछ सुदृढ़ हो चली, तहाँ देवता लोग पहुँचने लगे।

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा।।
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परमधीर नहिं चलहिं चलाए।।

(१/१४४/२-३)

ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी लोग पहुँचे। मनु को पहले से ज्ञात न होता तो वे भटक जाते। वह जानते थे कि ऐसे अनेकों ब्रह्मा, विष्णु और शंकर उन भगवान के

अंशमात्र हैं। इसलिए मनु ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। यह भी नहीं कहा कि देव! हमारा अहोभाग्य कि आपने दर्शन दिया। किन्तु ये देवता भी इतने निघर-घट थे कि स्वाभिमान खोकर मनु के समीप बार-बार पहुँचते रहे। लगता है विघ्न डालना ही उनका उद्देश्य था। वे मनु का कल्याण करने नहीं गये थे, कुछ दे नहीं रहे थे, प्रलोभन दे रहे थे- **'बहु भाँति लोभाए'**। लोभ भी मोह की एक प्रबलधारा ही है- **'काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।'** *(३/४३)*- मोह की ही सेना है, इसलिए मनु ने उधर ध्यान नहीं दिया। चिन्तन में लगे ही रह गये। **'अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा।।'** *(१/१४४/४)* हड्डियों का कंकाल मात्र रह गया, फिर भी मन में लेशमात्र पीड़ा नहीं थी। वे प्रसन्न थे, उनकी लव लगी थी और चिन्तन सन्तोषजनक हो रहा था।

भगवान ने देखा कि यह मन-क्रम-वचन से मेरे आश्रित है, इसका मन सिमट चुका है, तहाँ उन्होंने आकाशवाणी दी कि वर माँगो! वर माँगने को कहा, तो मनु ने माँगा-

जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुण्डि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन।।

(१/१४५/४-६)

मनु शंकरजी के दर्शन से सन्तुष्ट नहीं थे। वे बार-बार आये भी परन्तु उनसे कुछ नहीं माँगा। यद्यपि भगवान शिवजी तत्त्व में स्थित तत्त्वस्वरूप महापुरुष थे, पूर्ण प्राप्तिवाले थे; किन्तु केवल उनका दर्शन करके रह जाना, राह न चलना ठीक नहीं है। शंकरजी के हृदय में जो अनुभूति है उसे स्वयं चलकर प्राप्त करना मनु का लक्ष्य था। मनु जानते थे कि आचरण करके ही पाने का विधान है। किसी पहलवान को हाथ जोड़ने मात्र से पहलवान नहीं बन सकते। चिकित्सक के दर्शनमात्र से रोग-निवृत्ति नहीं होगी।

महात्मा बुद्ध भी अपने शिष्यों से कहा करते थे कि मैंने जो उपदेश दिया है, यदि आप उसपर चलते हो तो दूर रहकर भी मेरे समीप ही हो और यदि आचरण में नहीं ढालते तो मेरे समीप रहने से, दर्शन करने से भी कोई लाभ नहीं, पास रहकर भी बहुत दूर रहोगे। इसलिए आचरण करें।

मनु जानते थे कि भगवान शंकर सही हैं फिर भी उनसे कुछ नहीं माँगा, लेकिन जब भगवान ने आकाशवाणी दी तो वही माँगा, जो शंकर के हृदय में था। **'जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।'**- जिसके लिए मुनिलोग यत्न करते हैं। आजकल किसी मुनि के ऊपर विन्ध्यवासिनी आती हैं तो किसी के ऊपर हनुमान जी, कोई कहता है कि यक्षिणी

सिद्ध कर रहे हैं- ये सभी मुनि नहीं हैं। वह मुनि अभी मुनि नहीं है जो उस परमतत्त्व परमात्मा के लिए यत्न न करता हो। अभी वह बहका हुआ है, प्रत्याशी है।

मनु की कामना पर भगवान प्रकट हुए- **'बिस्वबास प्रगटे भगवाना।'** *(१/१४५/८)* कौन से भगवान? **'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।'** *(१/१८४/५)*- जैसा शिव ने कहा था। **'जेहि जानें जग जाइ हेराई।'** *(१/१११/२)* मनु ने देखा, जहाँ विश्व था सर्वत्र भगवान का वास दिखाई पड़ा। जहाँ भी दृष्टि पड़ी, पत्थर-पानी में- सब में उस प्रभु का स्वरूप छा गया। स्वयं भी खो गये, विश्व भी खो गया, मनु का जीव-संस्कार भी खो गया। जहाँ पहले विश्व दिखाई पड़ता था, भगवान सर्वत्र दिखाई पड़ने लगे।

'ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।' *(ईशावास्योपनिषद्, १)* इसी अवस्था को जिन-जिन महापुरुषों ने पाया, सबने इसी निर्णय को दुहराया कि जो कुछ दिखायी-सुनायी पड़ता है सर्वत्र ईश्वर का वास है। फिर भी हमें नहीं दीखता, कारण क्या है? **'जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।।'** *(१/१११/२)*, **'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।'** *(१/२२/७)* वह राम केवल भक्त के हृदय की वस्तु है, बाहर नहीं। आपके हृदय में भी वह है, किन्तु प्रसुप्त है। उसे जानने के लिए एक परमात्मा में श्रद्धा, उस परमात्मा को आपके हृदय से जागृत करा देनेवाले महापुरुष का सान्निध्य अपेक्षित है। बाहर न कोई देवी है न देवता। बाहर की वस्तुएँ पूजोगे तो कल्याण कदापि नहीं होगा और वस्तु भी कभी नहीं पाओगे- रामायण का यही निर्णय है।

(ण)

करोड़ों-करोड़ों देवी-देवता उस परमतत्त्व परमात्मा के अंशमात्र हैं। काकभुशुण्डिजी कहते हैं, **'रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।'** *(७/९०/७)*- भगवान अरबों कामदेवों के समान सुन्दर हैं। करोड़ों-करोड़ों दुर्गा के तुल्य शत्रु का नाश करने में सक्षम हैं। **'सारद कोटि अमित चतुराई।'**- अनन्त कोटि सरस्वतियों के समान वे चतुर हैं। **'बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।'** *(७/९१/५)*- अरबों ब्रह्मा के समान सृष्टि-रचना में निपुण हैं। **'बिष्नु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।'** *(७/९१/६)*- पालन करने में करोड़ों विष्णु के समान और संहार में अरबों रुद्र के समान हैं। करोड़ों इन्द्र के समान उनका ऐश्वर्य है, अरबों कुबेर के समान धनवान हैं और अरबों कामधेनु के समान इच्छित पदार्थों को देने में सक्षम हैं। करोड़ों-करोड़ों सूर्य भी जिनके सामने जुगनू के समान हैं, फिर भी हम पूजा सूर्य की करते हैं प्रभु की नहीं। आप उस मूल को क्यों नहीं पकड़ते, जिसके ये सभी नगण्य अंशमात्र हैं। **'तुलसी मूलहि सेइए फूलइ फलइ अघाइ।'** मूल की सेवा करेंगे तो फल-वृक्ष-पत्ते-फूल-टहनी सब आपके हैं और पत्ते-पत्ते दौड़ते रहेंगे तो वृक्ष से (मूल

परमात्मा) से भी हाथ धो बैठेंगे। देवताओं में, पत्थर में, पानी में, पशु और पक्षियों में कल्याण के नाम पर अमूल्य समय नष्ट न करें। किसी पर एहसान नहीं, स्वयं अपना उद्धार करें।

(त)

देवी-देवताओं की तो नहीं, हाँ शंकरजी की पूजा आरम्भ में भरतजी करते थे। राम के राज्याभिषेक को लेकर जब अयोध्या में षड्यन्त्र प्रारम्भ हुआ, तब भरतजी ननिहाल में थे। रात में इन्हें भयंकर स्वप्न दिखाई पड़ने लगे। मन दुश्चिन्ताओं से भरा था। इनके शमनहेतु **'बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना।।'** *(२/१५६/७)*- भरतजी ब्राह्मण-भोजन कराते थे, दान देते थे, अनेक प्रकार से शंकर का अभिषेक करते थे। **'मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।।'** *(२/१५६/८)*- हृदय से शंकरजी को भली प्रकार मनाकर माँगते थे कि माता कुशल से रहें, पिता कुशल से रहें, भाई और परिजन सभी सकुशल रहें।

मिला क्या? पिताजी स्वर्गलोक चले गये, माता विधवा हो गयीं, भाई वन चले गये और सात दिन बाद जब तक भरत अयोध्या नहीं पहुँच गये, किसी के घर चूल्हे तक नहीं जले थे। तो क्या भगवान शिव की पूजा भी गलत है? नहीं, **'सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।'** *(७/१०५/२)*- आदिगुरु भगवान शिव की सेवा का एकमात्र फल यही है कि राम के चरण-कमल में अविरल भक्ति जागृत हो जाय। भगवान शिव अपनी भक्ति से इतने सन्तुष्ट नहीं होते, वह जब भी सन्तुष्ट होते हैं राम की भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं। छोटी-मोटी याचनाओं पर ध्यान न देकर उन्हें भगवान राम का अप्रतिम भक्त बना दिया। जो भगवान शंकर का कर्तव्य था, उसका उन्होंने निर्वाह कर दिखाया। इसके पश्चात् भरतजी ने आजीवन राम की अविरल भक्ति में समय दिया, शिव में नहीं।

ऐसा ही उदाहरण काकभुशुण्डिजी का है। अपने पिछले जन्म में वे भगवान शिव के अनन्य सेवी थे, अन्य सबके विरोधी थे। उनके गुरु दयालु थे, नीति-निपुण थे। बताते रहते थे कि शिव की सेवा का फल भगवान राम के चरणों की भक्ति है- उनका यह उपदेश काकभुशुण्डिजी को अच्छा नहीं लगता था। वे उन गुरुदेव की अवहेलना करने लगे। एक दिन काकभुशुण्डिजी शिव के मन्दिर में बैठकर शंकरजी का नाम जप रहे थे। गुरुदेव आये किन्तु काकभुशुण्डिजी ने उठकर प्रणाम नहीं किया। गुरुदेव तो कोमल-शील स्वभाववाले थे, किन्तु गुरु का अपमान स्वयं शंकरजी भी सहन न कर सके। अजगर बन जाने, हजारों जन्म लेने और मरने का शाप मिल गया। जिन शंकरजी का वे पक्ष लेते थे वे ही शिव रुष्ट हो गये। गुरु महाराज को बड़ी करुणा आयी। भगवान शिव से

अनुग्रह की, प्रार्थना की। शंकरजी सन्तुष्ट हुए। बोले, जन्म तो इसे लेना ही होगा किन्तु जन्म और मृत्यु की असहनीय पीड़ा इसे नहीं होगी। किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा और अन्त में यह मनुष्य-शरीर में राम की भक्ति प्राप्त करेगा।

थे तो वे शिव के भक्त, लेकिन शंकरजी प्रसन्न हुए तो क्या दिया? राम की भक्ति! अन्तिम जन्म में उनके **'मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।'** *(७/१०६/६)* शिव-सेवा का फल **'अबिरल भगति राम पद होई।'**- राम के चरणों में लव लग गई, फिर भक्ति जागृत हो गयी।

(थ)

भारत में आज भी शिव-पूजा प्रतिष्ठित है। भगवान शिव के मन्दिर बहुतायत से हैं। यदि वहाँ यह बताया जाय कि भगवान शिव ने किस अभीष्ट को पाया था? उनकी विद्या क्या थी? उन्होंने कैसे तपस्या की? उन्होंने क्या सन्देश दिया? हम उसे कैसे प्राप्त करें?- तो वह मन्दिर सार्थक है। केवल इतना ही सीखने आप वहाँ जाते हैं। जहाँ यह न बताया जाता हो कि महापुरुष ने उस सत्य को कैसे प्राप्त किया?, तो वहाँ जाने से आपकी क्षति होगी, लाभ कभी नहीं होगा। केवल चरणामृत बाँटनेवाला मन्दिर कुछ भी नहीं है, धोखा है। भगवान शिव की शरण में जो गया, उसे उन्होंने राम के चरणों में सौंप दिया (प्रीति दी)। वे सदैव राम-नाम जपते थे-

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती।। *(१/१०७/७)*
कासीं मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी।। *(१/११८/१)*

काशी में शंकरजी अपने पराक्रम से मुक्ति नहीं देते, बल्कि नाम के बल से ही मोक्ष प्रदान करते हैं। एक परमात्मा के चिन्तन पर ही शंकरजी ने बल दिया।

ठीक इसी प्रकार, हनुमान एक सन्त थे। उनके भी जप का नाम राम था। **'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।'** *(१/२५/६)* पवनसुत ने उस परम पावन राम-नाम का जप किया था। हनुमान-हनुमान जपने के लिए हनुमान ने कभी नहीं कहा। उनके जीवन में जो भी अधिकारी भक्त मिला, उन्होंने उसकी बाँह पकड़कर राम के चरणों में गिरा दिया।

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।। *(७/४६/८)*

हनुमान के समान भाग्यशाली कोई नहीं था। तो भाग्य का स्रोत क्या है? **'नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।'**- राम के चरणों का अनुराग ही भाग्य का जन्मदाता है।

इन दोनों महापुरुषों के कथानकों से स्पष्ट है कि देवताओं में कुछ महापुरुष भी हैं जो हमारे-आपके पूर्वज रहे हैं; किन्तु करोड़ों कल्पित देवताओं के बीच उनकी संख्या एक प्रतिशत भी नहीं है। उनके प्रति श्रद्धा अपेक्षित है; क्योंकि उन्होंने किसी काल में

साधन करके परमात्मस्वरूप की स्थिति प्राप्त की थी। अपनी पीढ़ी के लिए वे सद्गुरु थे; किन्तु आज के लिये उनकी पूजा का विधान नहीं है और न उनके नाप-जप का। यदि कोई ऐसा करता भी है तो वे महापुरुष एक परमात्मा की ओर तथा व्यक्ति के समकालीन सद्गुरु की ओर उसे बढ़ा देते हैं। अतः आप आरम्भ से ही एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा स्थिर करें जिससे आपका समय नष्ट न हो और उनसे प्रेरणा लेते रहें।

(द)

गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की रचना की, तो अन्त में मानस-रोग भी बताये कि इसके विरोधी कौन हैं। **'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'** *(७/१२०/२९)*- मोह सम्पूर्ण व्याधियों का मूल है, काम वात है, कफ लोभ है, क्रोध पित्त है। काम, क्रोध और लोभ तीनों भाई जब एक हृदय में, एक स्थान पर इकट्ठे हो जाते हैं तो व्यक्ति सन्निपात के रोगी की तरह है। **'अहंकार अति दुखद डमरुआ।'** *(७/१२०/३५)*, **'तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी।'** *(७/१२०/३६)*; इस प्रकार पन्द्रह-पचीस रोगों का चित्रण किया और अन्त में बताया- **'मानस रोग कछुक मैं गाए।'** *(७/१२१/२)* हैं तो सबके पास लेकिन कोई विरला ही इन्हें पहचान पाया। तो भला इन रोगों से मुक्ति किस तरह से मिलेगी? इस पर कहते हैं-

सद्गुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।

(७/१२१/६-८)

सद्गुरु ही वैद्य हैं, उनके वचनों में पूरी श्रद्धा हो। भगवान की भक्ति (देवी-देवता की भक्ति नहीं, केवल भगवान की भक्ति) यही संजीवनी जड़ी है। अनुपान के लिए सद्गुरु में पूरी श्रद्धा हो। इस विधि से भले ही रोग नष्ट हो जाय अन्यथा करोड़ों यत्न करें तब भी नहीं जायेगा। जिस यत्न से रोग दूर होगा ही नहीं उसे आप करते क्यों हैं? उन प्रभु की भक्ति क्यों नहीं करते, जिससे ये मानस-रोग नष्ट होते हैं?

(ध)

अब तक आपने समझ लिया होगा कि हमारा-आपका इष्ट कौन है? इष्ट उसे कहते हैं जो हमें अनिष्टों से बचा ले। अनिष्ट कहते हैं क्षति को, नुकसान को। दैनिक जीवन में छोटे-बड़े नुकसान तो होते ही रहते हैं। किसी के सिर में दर्द है, सर्विस में बाधा आ गई, कहीं गाड़ी लड़ गई- इत्यादि परेशानियाँ आती रहती हैं। इसी प्रकार लाखों प्रकार की कामनाएँ मनुष्य के अन्दर भरी रहती हैं। जो इन तमाम अनिष्टों से बचा ले, कामनाओं की पूर्ति कर दे, उसका नाम है इष्ट।

सब कुछ सुरक्षित हो जाने और समृद्ध जीवन प्राप्त हो जाने पर भी शरीर तो क्षणभंगुर है। आज है तो कल के लिए कोई गारण्टी नहीं दे सकते। यह नश्वर है। योगेश्वर श्रीकृष्ण का कहना है कि, अर्जुन! यह आत्मा ही शाश्वत है और शरीर नाशवान् है। **'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'** *(गीता, ९/३३)*- तब तो आपका वैभव-विलास यहीं छूट जायेगा। काल बरबस घसीटकर उठा ले जायेगा। क्या कोई ऐसा भी उपाय है कि इस जन्म और मृत्यु से भी पार पा लें? वह कौन है जो इस भयंकर अनिष्ट से बचाकर हमें शाश्वत स्वरूप प्रदान कर दे, अकाल स्थिति प्रदान कर दे, शाश्वत धाम प्रदान कर दे, सदा रहनेवाली अक्षय शान्ति दे दे? इसमें यदि कोई सक्षम है तो एकमात्र परमतत्त्व परमात्मा, शाश्वत ब्रह्म। उसका परिचायक नाम 'राम' है। उसका जप करें, वही इष्ट है।

(न)

एक बार भगवान राम ने सभा बुलायी-

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।

(७/४२/१-२)

गुरु, मुनि, द्विज, सज्जन सभी बैठे थे, तब भक्तों के जन्म-मरण का दुःख दूर करनेवाले राम बोले-

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

(७/४२/७-८)

बड़े भाग्य से मनुष्य-शरीर मिला है। यह देवताओं को भी दुर्लभ है। देवता अच्छी करनी के फलस्वरूप भोगमात्र भोगते हैं, लेकिन स्वर्ग भी स्वल्प है इसलिए देवता भी मानव-तन से आशावान् हैं। यह शरीर साधन का धाम है, मुक्ति का दरवाजा है। इसको पाकर जिसने अपना परलोक नहीं सुधारा, वह जन्मान्तरों में दुःख पाता है। सिर पीट-पीटकर पछताता है। काल, कर्म और ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है। वस्तुतः यदि मनुष्य-शरीर उपलब्ध है और वह परलोक सँवारने के लिए उद्योग नहीं करता, तो न काल का दोष है, न कर्म का दोष है और न ईश्वर का। सब दोष उसी का है।

प्रायः दो-तीन बहाने मनुष्य करता है कि मेरे तो कर्म में ही नहीं लिखा है- कर्म को दोष देना, समय अनुकूल नहीं है- काल को दोष देना और कर्त्ता-धर्त्ता तो भगवान हैं- ईश्वर को दोष देना। लेकिन भगवान राम स्वयं कहते हैं कि यदि मानव-तन उपलब्ध है तो इनमें से किसी का भी दोष नहीं है, दोष अपना है। अन्यत्र कहते हैं-

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।। *(७/४३/७-८)*
जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।। *(७/४४)*

यह मानव-शरीर संसार-सागर से पार होने के लिए बेड़ा है, जहाज है। सद्गुरु नाविक है। मेरी कृपा अनुकूल वायु है। ऐसे दुर्लभ संयोग, व्यवस्था को पाकर जो भवसागर पार नहीं हो जाता वह अपने पौरुष का निन्दक अकर्मण्य है, मन्दमति है और अपनी आत्मा का हत्यारा है।

लेकिन पार होने का उपाय क्या है? इस पर कहते हैं-

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
(७/४४/१-२)

यदि आप परलोक चाहते हैं, परमश्रेय शाश्वत धाम चाहते हैं, अमृत-तत्त्व प्राप्त करना चाहते हैं अथवा इसी लोक में अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहते हैं, तो मेरा वचन सुनें और दृढ़ता के साथ धारण करें। भला वह है क्या? सिर्फ एक ही रास्ता है दोनों के लिए कि 'भगति मोरि'- मेरी भक्ति करो। शेषनाग की नहीं, किसी देवता की नहीं, मेरी भक्ति करो। यही श्रुतियों ने गाया है। अतः इष्ट कौन है? एक परमतत्त्व परमात्मा! (इसके सिवाय अनिष्टों से बचानेवाला कोई है ही नहीं। हमारी दरिद्रता का कारण है कि हम उस प्रभु को नहीं मानते।)

राम का नाम लेते ही प्रायः सब चौंक जाते हैं कि कौन राम? मानसकार ने राम का परिचय दिया, **'राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी।'** *(१/११६/६)*- जो व्यापक है, चिन्मय है, कण-कण में है, अविनाशी है, उसी का दूसरा नाम है राम। अस्तु, इष्ट कौन है? एक परमतत्त्व परमात्मा! जो उस पर निर्भर रहकर अपने कार्य में रत रहता है, समृद्धि अकारण ही उसका वरण करती है। वह सुखी लम्बा जीवन प्राप्त करता है। उसे स्नायुरोग नहीं होते। वह तनावमुक्त हो जाता है। भले आप संसार में फँसे क्यों न हों, परलोक एवं परमश्रेय की व्यवस्था आपके लिए सुरक्षित है। योगेश्वर श्रीकृष्ण का कहना है- अर्जुन! इस निष्काम कर्म में, उस परमात्मा में जो निष्ठा से साथ लग भर जाता है, अभी कुछ किया नहीं केवल लगा है, तब भी अर्जुन! उस पुरुष का कभी विनाश नहीं होता। इस पथ में आरम्भ का कभी भी नाश नहीं होता। आपने भली प्रकार बीजारोपण कर लिया, तो यह परमश्रेय तक पहुँचाकर ही छोड़ता है। कामनाएँ सिर्फ बाधा भर

डालती हैं, सत्य के अनुष्ठान को नष्ट नहीं कर पातीं। अतः मानस के अनुसार एक परमतत्त्व परमात्मा ही इष्ट है।

देवता और देवी- ये भ्रान्तियाँ हैं। मानस के अनुसार एक भी स्थल ऐसा नहीं है, जहाँ इनकी पूजा का विधान हो और न पूजनेवालों को ही सफलता मिली हो। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि यह हमें विरासत में मिली है और हम इसकी लकीर पीटते जा रहे हैं। दुःख है कि विरक्त महात्मा भी उसी विरासत में पायी हुई लकीर को पीट रहे हैं। कहते हैं कि रामकृष्ण परमहंसजी काली की पूजा करते थे किन्तु उन्होंने यही पूजा अपने अनन्य शिष्य विवेकानन्द को नहीं सिखायी। विवेकानन्दजी के उपदेश में आप कहीं देवी का नाम नहीं पायेंगे।

अयोध्यावासी भी चित्रकूट में यही लकीर पीटते दिखायी देते हैं। जब वे राम को मनाने गये तो **'गनप गौरि तिपुरारि तमारी।'** *(२/२७२/४)* की पूजा करते थे; किन्तु राम के राज्याभिषेक और उनकी सभा के पश्चात् वही अयोध्यावासी अपने बच्चों तक को शिक्षा देते हैं- **'भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि।'** *(७/२६/२)*- जो प्रणत का परिपालन करते हैं ऐसे राम को भजो! जैसे पलक आँखों की पुतली की रक्षा करती है वैसे ही राम को तुम भजो! स्वयं उनके द्वारा देवताओं के पूजने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस प्रकार आप देखते हैं कि गीता के ही स्वरों में श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने आरम्भ से लेकर अन्त तक क्रम-क्रम से एक परमात्मा पर ही बल दिया और उत्तरकाण्ड के अन्त में तो निर्णय दे दिया कि- **'सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।'** *(७/१२६/४)* इत्यादि कई चौपाइयों में प्रस्तुत है कि वही कवि है, पण्डित है, रणधीर है जिसका मन राम में अनुरक्त है। वही कुल धर्मपरायण है, नीति-निपुण और परम सयाना है, दक्ष तथा समस्त गुणों से युक्त है, वेद का सिद्धान्त उसी ने भली प्रकार जाना है जिसका मन राम में अनुरक्त है।

इस पर भी, न जाने क्यों लोग राम का भजन नहीं करते? व्यास लोग दिन-रात कथा तो रामायण की कहेंगे किन्तु भजन के समय चालीसा पढ़ेंगे, सप्तशती का पाठ करेंगे। कम-से-कम इस रामायण के सन्देश पर तो ध्यान देते हुए आचरण करना चाहिए। अब तक नहीं कर पाये तो समझें और जनता को समझाने का प्रयास करें। मानस की अन्तिम पंक्तियों तक गोस्वामीजी आपसे यही आग्रह कर रहे हैं कि अन्य किसी का नहीं, **'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।'** *(७/१२६/८)* राम का ही स्मरण करें, उन्हीं का गायन करें और उन्हीं के गुण-समूहों का श्रवण करें।

सुन्दर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
(७/१२६/छन्द)

सुन्दर, सुजान, कृपानिधान और अनाथों से प्रेम करनेवाले एकमात्र राम हैं। इनके समान निःस्वार्थ हित करनेवाला और निर्वाण (मोक्ष) देनेवाला भी दूसरा कौन है?

स्वयंसिद्ध एक इष्ट के स्थान पर अनेकों इष्ट बनाकर आज हम सभी बिखरे पड़े हैं। शाश्वत, एकमात्र सर्वव्याप्त परम ईश्वर परमात्मा है। इसीलिये सम्पूर्ण विश्व का इष्ट एकमात्र परमात्मा है। हममें से जो भी नश्वर की पूजा में लगे हैं, नास्तिक हैं। इन अस्तित्वविहीनों की पूजा करना-कराना, इसे प्रोत्साहन देना नास्तिकता को बढ़ावा देना है। ब्रह्मा से लेकर यावन्मात्र परिवर्तनशील जगत् के बीच एक परमतत्त्व परमात्मा ही अविनाशी अमृतस्वरूप है, इसलिए वही समस्त जगत् का पूज्य (इष्ट) है। उसकी जरूरत समाज में सदैव है और सबको है। अतः सब कुछ करते हुए यदि हम एक परमात्मा में श्रद्धा और उस परमतत्त्व परमात्मा का परिचायक दो-ढाई अक्षर का नाम 'ओम्' अथवा 'राम' का सुमिरन करते हैं तो हम आस्तिक हैं; क्योंकि हम अस्तित्व की पूजा कर रहे हैं। उस भजन की शुरुआत परमात्मा में श्रद्धा और उसके नाम के जप से है। हाँ, उसकी प्राप्ति सद्गुरु से है, जहाँ यह क्रिया अनुभवगम्य और सूक्ष्म हो जाती है।

सृष्टि में भगवान एक ही है- दो नहीं हो सकते, अनेक नहीं हो सकते। वह कण-कण में व्याप्त है। यदि दूसरा भगवान है तो उसके लिए दूसरा संसार चाहिए, व्याप्त होने के लिए। वह प्रभु रहता कहाँ है?-

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी।। *(१/२२/७)*

वह प्रभु सबके हृदय में निवास करता है। लेकिन दिखाई नहीं देता। अब उसे देखने की विधि बताते हैं-

नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।। *(१/२२/८)*

पहले नाम का निरूपण करें कि नाम है किस प्रकार? उसे जपा कैसे जाता है? श्वास में उठनेवाली धुन कैसे पकड़ में आती है? उसका प्रेरक कौन है? जब समझ काम कर जाय, तो उसके लिए यत्न करें। खून-पसीना एक करके उस परमात्मा को विदित कर लें, वह प्रकट हो जायेगा।

वह परमात्मा एक धाम है और उसमें प्रवेश का माध्यम है सद्गुरु ही। **'राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।'** *(१/१६५/६)*- यदि

तकदीर फूट जाय, घोर यातनाएँ लिख दी जायँ, तब भी सद्गुरु रक्षा कर सकते हैं और यदि सद्गुरु ही उपलब्ध नहीं हैं तो भगवान नाम की कोई वस्तु पहचान में नहीं आती। भगवान हृदय-देश में ही है; किन्तु यदि सद्गुरु नहीं है तो उसकी पहचान नहीं। इसी प्रकार, जो गुरु एकमात्र परमात्मा की उपलब्धि की क्रिया नहीं जानता, जो सत्य में प्रवेशवाला नहीं है, जो उस क्रिया को हमारे-आपके हृदय-देश में जगाने में, अनुभवी जागृति देने में सक्षम नहीं है, वह सद्गुरु नहीं, कुलगुरु है। जब तक सद्गुरु उपलब्ध नहीं है तब तक उस एक परमात्मा का परिचायक दो-ढाई अक्षर के नाम और एक परमतत्त्व परमात्मा के प्रति श्रद्धा यदि आप में है तो आपका सुमिरन, भजन और इष्ट सही है। यह श्रद्धा आपके भाव का एक परमात्मा में केन्द्रीयकरण, एक स्थल पर स्थिरीकरण ही आपका पुण्य और पुरुषार्थ बन जायेगा। इसके साथ ही वह आत्मा जागृत होकर जहाँ सद्गुरु हैं उनसे भेंट करा देगी। और जहाँ सद्गुरु मिले तो यौगिक क्रिया की जागृति आपके हृदय-देश में हो जायेगी। अनुभव, संकेत और इष्ट के आदेश आपको मिलने लगेंगे। जो आत्मा प्रसुप्त है, तटस्थ है, जागृत हो जायेगी।

आज कहा जाता है कि ईश्वर हृदय में वास करता है; लेकिन चार-छः महीने ही किसी ऐसे तत्त्वदर्शी महापुरुष की सेवा, उनके द्वारा बतायी हुई टूटी-फूटी साधना आपसे पार भर लग जाय तो वे जागृत हो जायेंगे। आपसे बातें करने लगेंगे, आपका मार्गदर्शन करेंगे। वह प्रभु आपको चलायेंगे। उन्हीं के निर्देशन में चलकर साधक उन्हें प्राप्त करता है। **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः'** *(मुण्डकोपनिषद्, ३/२/३)*- न यह आत्मा प्रवचन से प्राप्त होती है, न विशिष्ट बुद्धि से प्राप्त होती है, न बहुत सुनने-समझने से प्राप्त होती है, बल्कि लाखों भाविकों में से जिस किसी एक का वह वरण कर लेता है, जिसके हृदय से जागृत होकर उँगली पकड़कर चलाने लगता है, वही उसके निर्देशन में चलकर उसे प्राप्त करता है। और उँगली तभी पकड़ेगा जबकि एकमात्र परमतत्त्व परमात्मा में श्रद्धा हो और तत्त्वदर्शी सद्गुरु उपलब्ध हों। विचार-विमर्श हेतु आपका एवं आपके अमूल्य विचारों का सदैव स्वागत है।

।। ॐ ।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

* **जन्त्र मन्त्र सब भरम हैं, भूत-प्रेत अरु देव।**
अड़गड़ साँचे गुरु बिना, कैसे पावे भेव॥

* **अड़गड़ यहि संसार में, विष और अमृत दोय।**
मूरख चाहत विषय विष, भक्त सुधामय होय॥

* **ब्रह्मचर्य–** मन से विषयों का चिन्तन न करते हुए एक परमात्मा का निरन्तर चिन्तन ही ब्रह्मचर्य का आचरण है। इससे जननेन्द्रिय ही नहीं सकल इन्द्रिय संयम सहज है।

* **भजन साधना की निर्दिष्ट विधि–** एक परमात्मा में श्रद्धा तथा परमतत्त्व परमात्मा का परिचायक कोई दो-ढाई अक्षर के नाम – ॐ या राम का जप तथा किसी आत्मदर्शी, तत्त्ववेत्ता महापुरुष (सद्‌गुरु) का सान्निध्य, सेवा एवं ध्यान से भजन की शुरुआत होती है।

* **सद्‌गुरु–** जो संसार सागर को पार करने के लिए सेतुरूप हैं, जो समस्त विधाओं के उद्‌गम स्थल हैं, जो समस्त पुण्य कर्मों के करण-कारण हैं अतः ऐसे कल्याणकारी शिवस्वरूप सद्‌गुरु का सतत् स्मरण, उनके निर्देशन में ध्यान करना चाहिए।

* संसार में सबसे बड़ा हितैषी व दयालु अगर कोई है तो वह सिर्फ तत्त्वदर्शी (सद्‌गुरु) है और कोई नहीं। पूर्ण समर्पण से उनकी ओट में रहनेवाले भक्त का संसार की कोई भी विपत्ति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है।

* **धर्म–** धार्मिक उथल-पुथल को छोड़ एकमात्र मेरी शरण में हो अर्थात् एक भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण ही धर्म का मूल है। उस प्रभु को पाने की नियत विधि का आचरण ही धर्माचरण है और जो उसे करता है, वह अत्यन्त पापी भी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है।

* विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि नश्वर है। ब्रह्मा और उससे निर्मित सृष्टि, देवता और दानव दुःखों की खान, क्षणभंगुर और नश्वर हैं।

* **अनुभव गुरु की बात है, हृदय बसे दिन रात।
पलक-पलक अरु स्वाँस में, विपुल भेद दर्शात॥**

* गीता के अनुसार जो पुनर्जन्म का कारण है वह पाप है और जो परमात्मा को दिलाता है उस नियत विधि (कर्म) का आचरण ही पुण्य कर्म है। तत्त्वस्थित महापुरुष (सद्‌गुरु) में श्रद्धा उस परमात्मा को विदित करने का तरीका है।

* **गुरु कौन है?–** जो केवल हित का उपदेश करता है।

* **मानव-तन की सार्थकता–** सुखरहित क्षणभंगुर किन्तु दुर्लभ मानव तन को पाकर मेरा भजन कर अर्थात् भजन का अधिकार संसार भर के मानवमात्र को है।

* **ईश्वर का निवास–** वह सर्वसमर्थ, सदा रहनेवाला परमात्मा मानव के हृदय में स्थित है। सम्पूर्ण भावों से उसकी शरण में जाने का विधान है जिससे शाश्वत धाम, सदा रहनेवाली शान्ति की प्राप्ति होती है।

* **'विप्र' एक स्थिति–** क्रियात्मक पथ पर चलकर ब्रह्म की अनुभूति करनेवाले ब्राह्मण (विप्र) हैं। वह क्रिया है – केवल परमात्मा में निष्ठा।

* **भगवत्पथ में बीज का नाश नहीं–** आत्मदर्शन की क्रिया का स्वल्प आचरण भी जन्म-मरण के महान भय से उद्धार करनेवाला है।

* जो एकमात्र सद्‌गुरु में श्रद्धा और एकमात्र परमात्मा का नाम ॐ अथवा राम का सुमिरन करता है, वह क्रिया को न जानते हुए भी क्रियावान है।

* सब बात सब कोई जानते हैं, दो-दो पैसे में वेदान्त बिकते हैं किन्तु योग-साधना लिखने में नहीं आती। किसी अनुभवी महापुरुष द्वारा किसी अधिकारी साधक के हृदय में जागृत हो जाया करती है।

* सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है और असत्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है। आत्मा ही तीनों कालों में सत्य है, शाश्वत है, सनातन है। उसके प्रति श्रद्धा ही धर्म का मूल है।

* सद्‌गुरु जैसा प्रेमपूर्ण, हितचिन्तक, कृपालु विश्वभर में दूसरा कोई नहीं है। प्रभु की अहैतुकी कृपा से ही सद्‌गुरु के दर्शन होते हैं।

* 'गुरु के वचनों में गुंजाइश कलियुग की तिकड़मबाजी।' गुरु के आदेशों में घट-बढ़ नहीं करना चाहिए अन्यथा काल की कुटिल चाल है।

* **ईश्वर देखा जा सकता है–** अनन्य भक्ति के द्वारा मैं प्रत्यक्ष देखने, जानने तथा प्रवेश करने के लिए भी सुलभ हूँ। (गीता, 11/54)

* विश्व में प्रचलित सम्पूर्ण विचारों के आदि उद्‌गम स्थल भारत के समस्त अध्यात्म और आत्मस्थिति दिलानेवाले सम्पूर्ण शोध के साधन-क्रम का स्पष्ट वर्णन गीता में है जिसमें ईश्वर एक, पाने की क्रिया एक तथा परिणाम एक है – वह है प्रभु का दर्शन, भगवत्-स्वरूप की प्राप्ति और काल से अतीत अनन्त जीवन।

* गीता के ही एकेश्वरवाद को विश्व की विविध भाषाओं में मूसा, ईसा तथा अनेक सूफी सन्तों ने फैलाया। भाषान्तर होने से ये पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं किन्तु सिद्धान्त गीता के ही हैं। अतः गीता मानवमात्र का अतर्क्य धर्मशास्त्र है।

* गीता के अनुसार एक ही प्राप्त करने योग्य देव है। आत्मा ही सत्य है। सिवाय आत्मा के कुछ भी शाश्वत नहीं है। उन महान योगेश्वर ने कहा– अर्जुन! ओम्– अक्षय परमात्मा के नाम का जप कर और ध्यान मेरा धर। एक ही कर्म है – गीता में वर्णित परमदेव एक परमात्मा की सेवा। उन्हें श्रद्धा से अपने हृदय में धारण करो।

* भगवान श्रीकृष्ण के हजारों वर्ष पश्चात् परवर्ती जिन महापुरुषों ने एक ईश्वर को सत्य बताया – गीता के ही सन्देशवाहक हैं। ईश्वर से ही लौकिक, पारलौकिक सुखों की कामना, ईश्वर से डरना, अन्य किसी को ईश्वर न मानना – यहाँ तक को सभी महापुरुषों ने बताया किन्तु ईश्वरीय साधना, ईश्वर तक की दूरी तय करना, अनामय परमपद प्राप्त करना– यह केवल गीता में सांगोपांग क्रमबद्ध सुरक्षित है। देखें गीताभाष्य '**यथार्थ गीता**'।

श्री परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069
फोन - (022) 28255300 ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com